'तुमुल कोलाहल कलह में'

- जयशंकर प्रसाद

तुमुल कोलाहल कलह में, मैं हृदय की बात रे मन।
विकल हो कर नित्य चंचल
खोजती जब नींद के पल
चेतना थक–सी रही तब, मैं मलय की वात रे मन।
चिर विषाद विलीन मन की,
इस व्यथा के तिमिर वन की
मैं उषा–सी ज्योति-रेखा, कुसुम विकसित प्रात रे मन।
जहाँ मरू–ज्वाला धधकती,
चातकी कन को तरसती,
उन्हीं जीवन घाटियों की, मैं सरस बरसात रे मन।
पवन की प्राचीर में रुक,
जला जीवन जी रहा झुक,
इस झुलसते विश्वदिन की, मैं कुसुम ऋतु रात रे मन।
चिर निराशा नीरधर से,
प्रतिच्छायित अश्रु सर से,
मधुप मुखर मरंद मुकुलित, मैं सजल जल जात रे मन।

प्रसाद जी के 'तुमुल कोलाहल कलह में' गीत को समझने के लिए सबसे पहले यह जानना होगा कि यह लिया कहाँ से गया है तथा इसका संदर्भ क्या है? पुराणों में सामान्य प्रसंगों के क्रम में स्तुति या स्त्रोत आते हैं| 'रामचरितमानस' में भी 'हरिगीतिका' आदि छन्दों में स्तुति आदि की योजना हुई है। मानस में आए ये छन्द गीत ही हैं। ये हमेशा स्तुति के रूप में ही नहीं आए हैं, यदाकदा वर्णन के क्रम में भी प्रयुक्त हुए हैं। दोनों ही रूपों में इनकी रूपरेखा आज के गीतों जैसी ही है जहाँ ये वातावरण को मुखर बना देते हैं, भावों की गहराई को बढ़ा देते हैं तथा उन्हें और

स्पष्ट करने का भी काम करते हैं। प्रसाद जी का 'तुमुल कोलाहल कलह में...' भी एक ऐसा ही गीत है जो कामायनी के निर्वेद सर्ग से लिया गया है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है इस गीत को समझने के लिए इसका संदर्भ समझना जरूरी है। अतः कामायनी की कथा संक्षेप में (निर्वेद सर्ग तक) इस प्रकार है- देव संस्कृति के ध्वंसावशेष के रूप में मनु प्रलय की लहरों से किसी प्रकार से बच कर हिमालय के शिखरों पर पहुँच कर अपने प्राण बचाते हैं।

"हिमगिरि के उतुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष, भींगे नयनों से देख रहा था प्रलय प्रवाह।"

स्वयं को सृष्टि का विधायक समझने वाले देवताओं का अंत दे देखकर मनु विरक्त होकर जीवन यापन करने लगते हैं। बाद में मनु पाक यज्ञ प्रारम्भ करते हैं जिसकी बलि का अन्न देखकर कामगोत्रजा श्रद्धा यह अनुमान लगती है कि कोई जीवित व्यक्ति निकट ही है और मनु के निवास स्थान के समीप पहुचती है। वहाँ वह एक जीवित व्यक्ति (मनु) को देखकर उससे परिचय बनाने का प्रयत्न करती है परंतु मनु के जीवन-व्यापार के प्रति विरक्ति को देखकर वह आश्चर्यचकित रह जाती है। श्रद्धा उन्हें कर्म के प्रति प्रेरित करती है। श्रद्धा की इस प्रेरणा से मनु कर्म में निरत हो जाते हैं तथा उसके साथ अपना छोटा सा कुटुंब बनाते हैं। कुछ समय तक तो श्रद्धा और मनु का कुटुंब सुखपूर्वक जीवनयापन करता है पर शीघ्र ही मनु किलात और आकुली नामक दो असुर पुरोहितों के संपर्क में आकर हिंस्र यज्ञ (जिसमें पशु बलि दी जाती है) करने लगते हैं। केवल इतना ही नहीं वे मनोरंजन मात्र के लिए आखेट (शिकार) प्रारम्भ कर देते हैं। श्रद्धा इस बात के लिए जब मनु को समझती है तो मनु ना केवल उसको अनसुना कर देते हैं बल्कि श्रद्धा के पोषित मेष की बलि भी दे देते हैं। श्रद्धा इस कृत्य से बहुत आहत होती है। कुछ समय पश्चात मनु को यह ज्ञात होता है कि श्रद्धा गर्भवती है। मनु श्रद्धा के प्रेम के विभाजन की कल्पना से ही व्याकुल हो जाते हैं। अभी तक तो श्रद्धा के हृदय पर उनका एकछत्र अधिकार था पर शिशु के जन्म के बाद क्या होगा? मनु ऐसा सोचकर श्रद्धा को उसी अवस्था में छोड़कर चले जाते हैं।

मनु भटकते-भटकते सारस्वत प्रदेश में पहुँचते हैं, जहाँ कभी देवासुर संग्राम हुआ था। वहाँ भटकते हुए मनु को इड़ा मिलती है जो सारस्वत प्रदेश की अशिष्ठात्री है। इड़ा मनु को प्रजा-पालन के लिए प्रेरित करती है जिसके फलस्वरूप मनु सारस्वत प्रदेश का नियमन और संचालन करते हैं। मनु के दिशा-निर्देश में सारस्वत वासियों का जीवन यंत्र-आश्रित हो जाने के कारण अत्यंत सरल और सुगम हो जाता है। सब कुछ ठीक है, हर ओर व्यवस्था है, शांति है,

समृद्धि है परंतु मनु इन सब से संतुष्ट नहीं होते हैं, उनको सम्पूर्ण नियंत्रण चाहिए। अतः वे इड़ा के साथ दुर्व्यवहार का प्रयास करते हैं। देवताओं की भगिनी (बहन) इड़ा के साथ दुर्व्यवहार देखकर देवता रुष्ट हो जाते हैं जिससे भाँति-भाँति की प्राकृतिक विपदाएँ विध्वंश मचाने लगती हैं। । इन प्राकृतिक विपदाओं से त्रस्त होकर प्रजा प्रजापति मनु के पास पहुँचती है यह सोचकर कि यह मनु की यंत्र-आश्रित व्यवस्था ही है जिसने देवताओं को रुष्ट किया है। परंतु वहाँ का दृश्य देखकर (इड़ा से होते दुर्व्यवहार को देखकर) प्रजा विद्रोह कर देती है। एक ओर प्रजा एक ओर निरंकुश सत्ता के प्रतीक मनु। मनु क्या देखते हैं कि विद्रोहियों के नेता वही असुर पुरोहित किलात और आकुली हैं। प्रजा के विद्रोह और प्राकृतिक शक्तियों के प्रकोप के कारण मनु घायल होकर गिर पड़ते हैं।

उधर श्रद्धा को स्वप्न में प्रजा और मनु का संघर्ष दिखाई पड़ता है जिससे वह चिंतित हो जाती है और अपने पुत्र मानव को लेकर मनु की खोज में निकल पड़ती है। इसके आगे की कथा निर्वेद सर्ग में है जिसका प्रारम्भ ही क्षुब्धता, विषाद, दुख आदि तत्वों के साथ अर्थात एक तरह के डार्क टोन के साथ होता है।

"वह सारस्वत नगर पड़ा था क्षुब्ध मलिन कुछ मौन बना,
 जिसके ऊपर विगत कर्म का विष विषाद -आवरण तना।"

अपनी कहानियों में द्वंद्व के तत्व के लिए प्रसाद प्रसिद्ध रहे है पुरस्कार और आकाशदीप में ये द्वंद्व सर्वाधिक मुखर हुआ है।पहले में व्यक्तिगत प्रेम और देशप्रेम का द्वंद्व है तो दूसरे में प्रेम और घृणा का द्वंद्व है। यहाँ भी कुछ वैसा अवसर आता है। कई दिन कई रातें बीत गई हैं। अब इड़ा को बीती बातें याद कर दुख होता है, ग्लानि होती है। वो मनु के प्रति घृणा और ममता के द्वंद्व से ग्रस्त हो जाती है।-

"इड़ा ग्लानि से भरी हुई बस सोच रही बीती बातें,
 घृणा और ममता में ऐसी बीत चुकीं कितनी रातें।"

उसका सहज कोमल नारी हृदय यह सोचने लगता है, 'मनु ने मुझसे स्नेह किया था, प्रेम किया था यही तो दोष हो गया, यही अपराध हो गया परंतु अनन्य प्रेम, अबाध प्रेम क्या किसी बाधा को मानता? उसके प्रेम की अबाधता और अनन्यता ही उसके अपराध का कारण बन गई। आज उसके उस अपराध के सामने उसके सारे सुकृत्य, सारे उपकार शून्य हो गए!'-

"उसने स्नेह किया था मुझसे हाँ अनन्य वह रहा नहीं,
सहज लब्ध थी वह अनन्यता पड़ी रह सके जहाँ कहीं।
बाधाओं का अतिक्रमण कर जो अबाध हो दौड़ चले,
वही स्नेह अपराध हो उठा जो सब सीमा तोड़ चले।
हाँ अपराध, किन्तु वह कितना एक अकेले भीम बना,
जीवन के कोने से उठकर इतना आज असीम बना!
और प्रचुर उपकार सभी वह -सहृदयता की माया-
शून्य-शून्य था! केवल उसमें खेल रही थी छल-छाया!"

इड़ा असमंजस में पड़ जाती है, वह समझ नहीं पाती है कि वह मनु को दंड देने बैठी है या बैठकर घायल मनु की रखवाली कर रही है-

"इसे दंड देने मैं बैठी या करती रखवाली मैं,
यह कैसी है विकट पहेली कितनी उलझन वाली मैं?"

इड़ा ऐसा सोच ही रही होती है कि उसे दूर से आती आवाज सुनाई पड़ती है।

"अरे बता दो मुझे दया कर कहाँ प्रवासी है मेरा?
उसी बावले से मिलने को डाल रही हूँ मैं फेरा।"

यह श्रद्धा थी जो स्वप्न में मनु का पतन देखने के बाद अपने पुत्र मानव को लेकर मनु की खोज में निकल पड़ी थी। इड़ा माँ-बेटे की क्लांत काया को देखकर द्रवित हो जाती है। वह दोनों के पास

पहुँच उनके दुखक कारण पूछती है साथ ही यह भी कहती है कि इतनी रात को कहाँ जाओगी मेरे साथ बैठो, कुछ बातें करो, अपने व्यथा का कारण बताओ इस तरह यह रात बीत जाएगी।-

"इड़ा आज कुछ द्रवित हो रही दुखियों को देखा उसने,
पहुँची पास और फिर पूछा "तुमको बिसराया किसने?
इस रजनी में कहाँ भटकती जाओगी तुम बोलो तो,
बैठो आज अधिक चंचल हूँ व्यथा-गांठ निज खोलो तो।..."

इस आत्मीयता का आश्रय पाकर श्रद्धा रुक जाती है तथा मानव को लेकर इड़ा के साथ आग के पास पहुँचती है। परंतु यह क्या? आग की आकस्मिक धधक से उसे वहाँ एक पहचानी सी आकृति दिखाई देती है। कौतूहलवश श्रद्धा उस आकृति के कुछ और पास जाती है ताकि उसे ठीक से देख सके। लेकिन वहाँ जो कुछ भी उसे दिखता है उससे उसकी आँखें आश्चर्यवश खुली की खुली रह जाती हैं। वह मनु को वहाँ घायल अचेतावस्था में पाती है। वह सोचने लगती है, 'तो क्या वह स्वप्न वास्तव में सच हुआ?'

इसके बाद की पंक्तियाँ बहुत ध्यान देने योग्य है क्योंकि इस गीत की कुंजी इन्हीं पंक्तियों में है। यही वो भाव है, वो वातावरण है जिसे यह गीत गहराता है-

"इड़ा चकित, श्रद्धा आ बैठी वह थी मनु को सहलाती,
अनुलेपन-सा मधुर स्पर्श था व्यथा भला क्यों राह जाती?

मनु की आँखें खुलती हैं और श्रद्धा को अपने पास देखकर आँसू से भर जाती हैं। श्रद्धा की आँखें भी नम हो जाती हैं। मानव को अपने पिता के दर्शन होते हैं। वह पुलकित होकर उनसे मिलता है। इस प्रकार रात के उस अंधकार में सुखद कौटुम्बिक मिलन होता है और उसके बाद-
"आत्मीयता घुली उस घर में छोटा-सा परिवार बना,
छाया एक मधुर स्वर उसपर श्रद्धा का संगीत बना।"
इस तरह 'तुमुल कोलाहल कलह' गीत वास्तव में श्रद्धा का संगीत है।

‘तुमुल कोलाहल कलह में’ का अर्थ :

व्यथित और पीड़ित मनु की सारी पीड़ा, सारे दुख-विषाद श्रद्धा का आगमन दूर कर देता है, यही इस गीत का केंद्रीय भाव है। गीत और प्रगीत दोनों विधाओं में सामान्यतः एक टेक होती है जिसे ध्रुवपद, अचलपद या स्थायी कह सकते हैं और बाकी अन्तराएँ होती हैं। इन अन्तराओं में एक ही केंद्रीय भाव को भाँति-भाँति के बिम्बों और प्रतीक-विधानों के द्वारा दुहराया जाता है। प्रत्येक अंतरा के साथ केंद्रीय भाव गहराता जाता है।

"तुमुल कोलाहल कलह में
मैं ह्रदय की बात रे मन

विकल होकर नित्य चचंल,
खोजती जब नींद के पल,
चेतना थक-सी रही तब,
मैं मलय की बात रे मन!"

विश्व के तुमुल कोलाहल में अर्थात सांसारिक मार-पीट, भागा-दौड़ी, लूट-खसोट इत्यादि जंजालों के बीच मैं हृदय की बात (श्रद्धा) हूँ! जग-जीवन के नित्य के व्यापारों से थक कर जब चेतना नींद के सुखद पल खोजने लगती है, श्रम के पश्चात विश्राम खोजने लगती है तब मैं मलय पर्वत की सुवासित, शीतल और सुखद हवा के रूप में आती हूँ और चेतना की पीड़ा को, उसके श्रम के भार को हर लेती हूँ।

"चिर विषाद-विलीन मन की,
इस व्यथा के तिमिर-वन की;
मैं उषा-सी ज्योति-रेखा,
कुसुम-विकसित प्रात रे मन!"

जीवन दुख और विषाद के अंधकार में उलझा हुआ है, खोया हुआ है; उससे निकलने का रास्ता नहीं उसे नहीं सूझता है। व्यथा के अंधेरे वन में कोई रास्ता मिले भी तो कैसे मिले? परंतु मैं उसी व्यथा के घनघोर अंधेरे वन में ज्योति की रेखा के समान हूँ , कलियों को खिला देने वाली सुंदर, सुखकर, प्रेरक प्रभात के समान हूँ।

"जहाँ मरु-ज्वाला धधकती,
चातकी कन को तरसती,
उन्हीं जीवन घाटियों की,
मैं सरस बरसात रे मन!"

जीवन अतृप्ति के कारण धधकती हुई मरूभूमि(रेगिस्तान) के समान है। इस मरुभूमि में (जीवन में) अतृप्त मन चातक पक्षी के समान तृप्ति रूपी स्वाति की बूंद (आंशिक तृप्ति) के लिए तरस रहा है। जीवन की उन्हीं जलती घाटियों में मैं तृप्ति की सरस वर्षा के समान हूँ अर्थात अतृप्ति के कारण सूखे जीवन में मैं सम्पूर्ण तृप्ति हूँ, जहाँ बून्द की इच्छा है वहाँ मैं पूरी बरसात हूँ।

"पवन की प्राचीर में रुक,
जला जीवन जी रहा झुक;
इस झुलसते विश्व दिन की
मैं कुसुम-श्रृतु-रात रे मन!"

पवन की प्राचीर क्या है? हमारे चारों ओर वायु का एक बहुस्तरीय आवरण है जिसे हम 'वातावरण' कहते हैं। यह वातावरण भी किस ओर संकेत करता है? क्योंकि 'पवन की प्राचीर' मतलब तो वातावरण हो गया अगला शब्द है 'में'। पवन की यह प्राचीर धरती के ही तो चारों ओर है। अतः 'पवन की प्राचीर में रुक' का अर्थ हुआ धरती या समाज; सामान्यीकरण कर दुनिया कह सकते हैं क्योंकि इसके व्यापक अर्थ में दोनों आ जाते हैं।

दुनिया के बंधनों में, कर्मकाण्डों और अनुशासनों में जीवन जकड़ गया है। इन जागतिक व्यापारों के भार से जीवन जल रहा है तथा अब उसकी शक्ति, उसकी ऊर्जा जवाब दे रही है।

जीवन श्रमित और क्लांत होकर झुक चुका है। दुनिया में व्याप्त कठिनाइयों, परेशानियों, व्यवधानों, छन्दों, बंधनों, अनुशासनों से जेठ की दोपहरी के समान जलते जीवन में मैं कुसुम-ऋतु की रात अर्थात बसंत ऋतु की सुंदर, सुहानी रात हूँ।

"चिर निराशा नीरधार से,
प्रतिच्छायित अश्रु-सर में;
मधुप-मुखर मरंद-मुकुलित,
मैं सजल जलजात रे मन!"

जीवन का आकाश निराशा के बादलों से भरा है, तथा निराशा के उन बादलों के नीचे आँसुओं का महान(विशाल) सरोवर है। कभी समाप्त न होने वाले निराशा के बादलों से चारों ओर से घिरे आँसुओं के विशाल सरोवर के बीच मैं प्रेम, करुणा और अनुराग से भरी एक जलजात अर्थात कमल हूँ। आशा के मकरंद और जीवन की सुगंधी से युक्त मेरे मुकुलित रूप पर मधुप(भौंरा) मन मंडरा रहा है। चारों ओर व्याप्त इस निराशा के वातावरण में मेरे आशा रूपी मकरंद का ही उसे सहारा है।

ध्यान देने वाली बात यह है कि बादलों का रंग स्याह होता है; व्यथा और निराशा का रंग भी नीला होता है। आँसू जब सरोवर के रूप में राशिभूत होंगे तब उस सरोवर का रंग भी नीला होगा। लेकिन कमल का रंग अरुण होगा- कुछ-कुछ लाल, कुछ-कुछ गुलाबी। ये अरुण रंग आशा का रंग है, अनुराग का रंग है, प्रभात का रंग है और शुरुआत का रंग है। इस बात को ध्यान में रखकर पढ़ने पर उपरोक्त पंक्तियों के अर्थ में और गहराई आ जाती है। वैसे तो पूरे गीत में सानुप्रासिक पदों की योजना हुई है परंतु अंतिम में अनुप्रास अपने पूरे सौंदर्य के साथ उपस्थित हुआ है- "मधुप-मुखर मरंद-मुकुलित, मैं सजल जलजात रे मन!"। 'मकरंद' के स्थान पर 'मरंद' शब्द का प्रयोग कर संगीतात्मकता की रक्षा की गई है तथा इससे अतिरिक्त कोमलता भी आयी है। 'जलजात' के लिए 'सजल' विशेषण के प्रयोग ने रूप और अर्थ दोनों के स्तर पर सुंदरता को बढ़ाया है।